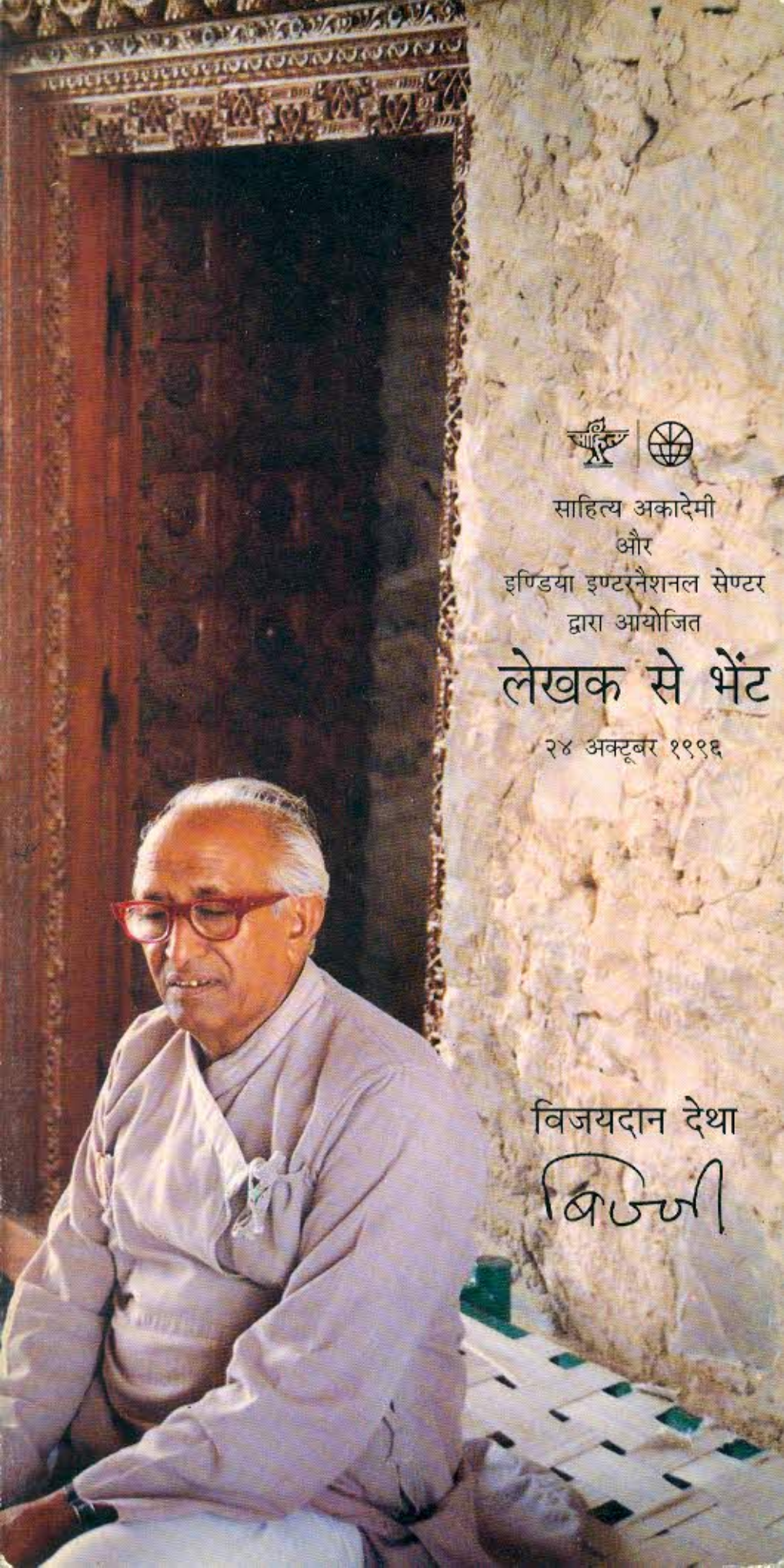

साहित्य अकादेमी
और
इण्डिया इण्टरनैशनल सेण्टर
द्वारा आयोजित

लेखक से भेंट

२४ अक्टूबर १९९६

विजयदान देथा

बिज्जी

लेखक के विचार : कुछेक उद्धरण

· · · देश की सभी मातृभाषाओं का विकास होने से ही हिन्दी विकसित होगी। उसका शब्द-भण्डार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ेगा। उनका विकास अवरुद्ध हुआ तो हिन्दी का विकास पहले अवरुद्ध होगा। सिर्फ अपने मुद्रित शब्द भण्डार से हिन्दी की गाड़ी नहीं चलेगी। मातृभाषाओं के जीवन्त शब्द जुड़ने से ही हिन्दी का सरोवर छिलाछिल भरेगा। हिन्दी मातृभाषाओं के पाठकों को अपने अनगिनत पाठक सौंपेगी और मातृभाषाएँ उसकी काली छपाई में नित नये रंग भरेंगी। इस लेन-देन से हिन्दी में नये प्राणों का संचार होगा और मातृभाषाओं को अपने फैलाव के लिए विस्तृत आकाश मिलेगा। जो इस विनिमय को भली भाँति नहीं समझता, उसके हाथों हिन्दी और मातृभाषाओं का अहित होना तय है।

⁂ मेरी फुलवारी : समकालीन भारतीय साहित्य

दुनिया की हर भाषा — चाहे वह कितनी ही 'अविकसित' या 'पिछड़ी' हुई हो, उस में बीज की तरह उपयुक्त जमीन, पानी, हवा, धूप व सुरक्षा मिलने पर विस्तार की पूरमपूर सम्भावना अन्तर्निहित है। · · · राष्ट्र की ताकत को भाषा की ताकत मान लेना निरी भ्रान्ति है। अंग्रेजी भाषा के सर्वतोमुखी विकास-विस्तार के लिए कोई अंग्रेजी भाषा की अपनी मूलभूत विशिष्टता नहीं, बल्कि इसकी पृष्ठभूमि में सम्बन्धित राष्ट्रों की साम्राज्य लिप्सा, पाशविक कुटिलता, बर्बरता, भौतिक सम्पन्नता इत्यादि मिश्रित क्षमताओं का योगदान ही प्रमुख है। अन्यथा यही अंग्रेजी — बेचारी अभ्यागत अंग्रेजी कुछ ही समय पूर्व मुश्किल से डेढ़ या दो सौ वर्ष पहिले बाइबिल का अनुवाद करने के लिए अक्षम थी। और तो और कानून या विधि-शास्त्र के लिए अयोग्य समझी गई थी। और आज उसका यह नखरा है !

⁂ रूँख

· · · फिर उस मंगलमयी शुभ-घड़ी से शरत-बाबू को लीलने लगा सो निरन्तर चार-पाँच बरस लीलता ही गया। · · · शरत-साहित्य को बाँचने का वैसा आनन्द कोई क्या लेगा? वे मेरे पहले 'सतगुरु' थे और मैं उनका न जाने कौन-सा परम-शिष्य? सारे हिन्दुस्तान में अपने जैसा अकेला ही शिष्य जो परीक्षाओं के दौरान भी रात को और सवेरे जल्दी शरत-साहित्य ही पढ़ता रहता था। क्या पढ़ाना चाहिए और क्या पढ़ाया जा रहा है? · · · यों तो हर व्यक्ति, वनस्पति, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, पहाड़-टीले, नदियाँ-सरोवर, बादल-बिजली, चाँद-सितारे — मतलब की समस्त ब्रह्माण्ड एक लेखक या कलाकार के लिए गुरु का ही काम करता है, पर मोटे रूप में शरत-बाबू के बाद मेरा दूसरा सतगुरु है — एण्टन चेखोव! कितना सीखा है! आज भी सीखता जा रहा हूँ। जिसने कथा-साहित्य की नदी का रुख ही नहीं मोड़ा, पहाड़ को अपनी जगह से खिसकाया है! · · · अब साल भर से (२१ अप्रेल १९८४) तीसरे परम गुरु हैं — रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जो सब के गुरुदेव हैं। किन्तु नासमझी के दौर में जब लिखने का गुमान ज्यादा था, पढ़कर अर्थ समझने का मिथ्या-दम्भ था, तब उनकी कटु आलोचना भी करने का अपराध कर चुका हूँ। निरन्तर प्रक्रिया की अनिवार्यता को शायद अपराध कहना उचित नहीं। यात्रा के बढ़ते चरण ही मंजिल के करीब पहुँचाते हैं। हर कदम की अपनी उपादेयता है, सार्थकता है। हर कदम सत्य है, पर अन्तिम नहीं। सत्य का अन्तिम रूप कुछ भी नहीं होता !

⁂ रूँख

सब-कुछ नया और अपूर्व

एक नजर में ये कहानियाँ लोक-कथाओं का भाषाई रूपान्तर लगती हैं, जैसे देथा ने रामनरेश त्रिपाठी के लोकगीतों के संग्रह की तरह लोक-कथाओं का संग्रह किया है। लेकिन ठीक यहीं ये कहानियाँ चकमा देती हैं और 'उलझन' पैदा करती हैं। देथा यह बताना भी नहीं चाहते कि वे कहानियाँ लिख रहे हैं। वे तो जो कुछ मौखिक, वाचिक और निजन्धरी है, उसे लिपिबद्ध कर रहे हैं — यथावत् तथा उसी भाषा में। लेकिन क्या देथा केवल यही करना चाहते हैं और ये कहानियाँ क्या महज यही, तथा इतनी ही हैं? क्योंकि देथा का 'लेखक' बिल्कुल गायब रहता है और केवल 'संग्रहकर्ता' सामने होता है, एक 'ओडियो विजुअल' यंत्र के साथ सब-कुछ अंकित और चित्रित करता हुआ। मेरी समझ में यह क्षमता हिन्दी में या किसी भी अन्य भारतीय भाषा में केवल देथा के पास है या एक बहुत बड़े पैमाने पर बोर्खेस ने इसे उपलब्ध किया है। देथा सब-कुछ यथावत् रख देते हैं और उस में अपने-आप नयी अर्थ-छवियाँ, नये संकेत, नयी व्याख्याएँ उभरने लगती हैं। चूंकि यहाँ लेखकीय दबाव लगभग शून्य होता है, इसलिए यह सब बहुआयामिता लिये हुए ऐसा विराट रूप धारण कर लेता है कि आप बार-बार उनसे नये अर्थ तथा नये संकेत-सूत्र प्राप्त करते रहते हैं। क्या यह चमत्कार नहीं है कि यहाँ कुछ भी नया नहीं है, वहीं सब-कुछ 'नया' तथा 'अपूर्व' प्राप्त हो जाता है? ... मध्ययुग के अँधेरे जंगलों, ठगों-लुटेरों, अन्ध-विश्वासों, रूढ़ियों, स्त्री-पुरुष, राजा-रिआया के सम्बन्धों, धन और यौन की लिप्सा से युक्त प्राणियों — इन सब के बीच ये कहानियाँ बिना बताये और बिना कुछ जाहिर किये आधुनिक भावबोध के उन सभी स्तरों का उद्घाटन कर जाती हैं, जिन के किसी एक पहलू का स्पर्श प्राप्त करने के लिए भी उनके आधुनिकतावादी रचनाकारों को न जाने कितने 'द्रविड़ प्राणायाम' करने पड़ते हैं। वैसे भी थोड़ा गौर करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि देथा को आधुनिक कला प्रवृत्तियों, विचारधाराओं की जैसी सघन जानकारी है और उनकी अभिव्यक्ति के वे सारे कौशल हासिल हैं, जो किसी नये, सक्षम तथा चौकन्ने रचनाकार को भी शायद ही हों।

समीक्षा : विजय मोहन सिंह
साप्ताहिक दिनमान, दिल्ली, २३-२९ अक्टूबर १९८३

कुछ कथाओं का प्रारम्भ

स्वारथ साँई, स्वारथ राम। स्वारथ पूजा, स्वारथ धाम। कैसा दोस्त और कैसा भाई! कैसी बहन और कैसी भौजाई! कहाँ मुल्क और कहाँ भलाई! थूक उछाले मिले मलाई। कैसी माँ और कैसा बाप! सब है मतलब का सन्ताप। धरम-करम की बातें झूठी। अपने दाने, अपनी मूठी। खटदरसन का खोटा ज्ञान। थोथी माला थोथा, ध्यान। झूठी प्रीत और रूखा नेह। किसका घर और किसका गेह! भजन-साखी, हेली हरजस। तीर हलाहल, टेढ़े तरकस। सूने मारग और सूने पन्थ। उजले वेस और काले सन्त। तो निर्गुण निराकार साँई हरेक का स्वार्थ पूरा करे कि···।

⁂ दुविधा : कागपन्थ

मंशाओं की तीख किसने लाँघी, कौन लाँघे? यह स्याह-सफेद सीख किसने माँगी, कौन माँगे? अन्तस् की असंख्य कलियाँ किसने सानी, कौन साने? ये झूठ-साँच की गलियाँ किसने जानी, कौन जाने? इन्द्रधनुष का चीर किसने ताना, कौन ताने? यह मेह बरसता नीर किसने छाना, कौन छाने?

⁂ दुविधा : बेदाग चिकनाहट

ये भारी-भरकम पोथे, कबिरा जाने जितने थोथे। ये धरम-करम के पथ सारे, मल-कीचड़ के ही गलियारे। ये तीरथ-बरत के धाम, जिन से अल्लाह बचाये राम। यह भाग-भरम की शोभा, तोबा रे बापू तोबा। ये ऊँच-नीच की बातें, अनन्त कजियारी रातें। ये राव-रंक के जाले, सरासर झूठे और काले। सूरज उगने पर मिटती रात। दिशा-दिशा में स्वर्णिम प्रभात की हरियाली के बीच और हवा के झूले पर एक गाँव बसा हुआ था।

⁂ दुविधा : दूजो कबीर

प्रकृति-चित्रण

धीरे-धीरे अँधेरा घना होने लगा। उस सुनसान जंगल का एक-एक दरख्त गोया अदीठ अंजलि से समूचा उजाला पी रहा हो। और हरेक दरख्त के लिए जैसे अलग-अलग रात उतरी हो। यह रात ही दूसरी है। यह अँधियारा ही दूसरा है। ये तारे ही दूसरे हैं और इस बेढ़ब नजारे को देखने वाली यह निगाह ही दूसरी है। यह कैसा जादू हुआ!

अब तक बनजारी ने अँधियारे का साँवला रूप ही देखा था, पर आज वही घना अँधियारा उसकी आँखों के सामने जगमगाने लगा। कितना मोहक! कितना सुन्दर! सूरज का नंगा उजाला इसके बराबर खड़े होने की हिम्मत ही नहीं जुटा सकता! ··· चौतरफ छाये उस अथाह अँधियारे को वह अपने अन्तस् में उतार रही थी कि सहसा आकाश की कोख फाड़कर गुलाल का एक पिण्ड बाहर आता दिखा। साँवले लिबास में हलका उजाला घुलने लगा। बात की बात में गुलाल के उस पिण्ड की रंगत सुनहरी हो गई। ··· न कोई भनक, न कोई आवाज। दसों दिशाओं में मौन छाया था। जैसे चाँद के बहाने कुदरत ने अपने मुँह पर पट्टी बाँध ली हो।

⁂ उलझन

विशिष्ट विवरण

१९४९

१९९५

जन्म : १ सितम्बर, १९२६, बोरुन्दा, जोधपुर।
माँ : सिरूँ कँवर - १८९६-१९४६
पिता : सबलदान जी देथा, १८८९ - १९३०
पत्नी : सायर कँवर - १९३६-विवाह १९५०

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा : जैतारण (पाली) १९३२ से १९३५
प्राथमिक शिक्षा : बाड़मेर १९३५ से १९३७
माध्यमिक शिक्षा : दरबार हाई स्कूल जोधपुर, १९३८ - १९४२
पंजाब मैट्रिक : लाहौर से, १९४४
उच्च शिक्षा : जसवन्त कॉलेज, जोधपुर, १९४४-१९४९/एम.ए. प्रथम वर्ष हिन्दी।

प्रकाशन

⁑ ऊषा : हिन्दी काव्य संग्रह, १९४७, सूर्योदय का चित्रण। साहित्य सदन, जोधपुर।
⁑ जोधपुर के ज्वाला साप्ताहिक में छद्मनाम से नियमित तीन स्तम्भ-दोजख की सैर, घनश्याम पर्दा गिराओ और हम सभी मानव हैं, १९४९ से १९५२ तक ज्वाला, आग, अंगारे व रियासती साप्ताहिक में अबाध लेखन।
⁑ प्रेरणा, मासिक पत्रिका, कोमल कोठारी के साथ, सह सम्पादन १९५३
⁑ प्रेमचन्द के पात्र : १ जनवरी १९५४, प्रेरणा प्रकाशन, जोधपुर। कोमल कोठारी, प्रयाग राज मेहता के साथ सह लेखन।
⁑ परम्परा : त्रैमासिक पत्रिका के तीन विशिष्ट अंक — लोकगीत, गोरा हटजा, जेठवै रा सोरठा १९५६ से १९५८ चौपासनी शोध-संस्थान, जोधपुर। सम्पूर्ण अनाम सम्पादन व अधिकांश लेखन।
⁑ रूपम : त्रैमासिक पत्रिका, कोमल कोठारी के साथ, केवल एक अंक अगस्त १९५८
⁑ राजस्थानी लोकगीत — ६ भाग, १९५८, संगीत नाटक अकादेमी, जोधपुर।
⁑ वांणी : राजस्थानी मासिक पत्रिका, कोमल कोठारी के साथ, १९५८ से १९६०, रूपायन संस्थान, बोरुन्दा।
⁑ लोक संस्कृति : हिन्दी मासिक पत्रिका, कोमल कोठारी के साथ १९६१ से १९७६
⁑ रूपायन संस्थान, लोक सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना कोमल कोठारी के साथ दीवाली, १९६०
⁑ बातां री फुलवाड़ी, भाग-१, दीवाली, १९६१ ⁑ भाग-२, होली, १९६२ ⁑ भाग-३, १९६२
⁑ भाग-४, होली, १९६४ ⁑ भाग-५ होली, १९६५ ⁑ भाग-६ मां रौ बदळौ, प्रथम खण्ड १९६५
⁑ भाग-७ मां रौ बदळौ, दूसरा खण्ड १९६५ ⁑ भाग-८ होली, १९६६ ⁑ भाग-९ आखातीज १९६६ ⁑ भाग-१०, जनवरी १९७२ ⁑ भाग-११, अक्टूबर १९७५ ⁑ भाग-१२, जून १९७६
⁑ भाग-१३, १९७६

भाग-१ से १० रूपायन संस्थान से प्रकाशित, भाग ११ से १३ रूपम प्रकाशन, बोरुन्दा से प्रकाशित।

अन्य प्रकाशन

⁑ तीडौराव : राजस्थानी की पहली पॉकेट बुक, रूपायन संस्थान, दीवाली १९६५ ⁑ अनोखा पेड़, बाल कथाएँ, हिन्दी, १९६८ रूपायन संस्थान ⁑ राजस्थानी-हिन्दी कहावत कोश, प्रथम जिल्द, १५ अगस्त, १९७७, रूपम प्रकाशन, बोरुन्दा ⁑ रूँख : वाणीपुरम्, बोरुन्दा, १९८७ ⁑ दुविधा व अन्य कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन १९७९ (दूसरा संस्करण, सारांश प्रकाशन १९९५) ⁑ उलझन : कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन १९८२ (दूसरा संस्करण सारांश, प्रकाशन, १९९६) ⁑ फुलवाड़ी भाग, १०, हिन्दी अनुवाद, १९९२, साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली ⁑ कब्बूरानी : बालकथाएँ, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, १९९२ ⁑ कलम रौ उस्ताद (संपादन, गणेशीलाल व्यास उस्ताद की राजस्थानी कविताएँ, साहित्य आकदेमी, १९८४ ⁑ हमारा उस्ताद, समीक्षा, राजस्थानी साहित्य अकादेमी, उदयपुर, १९८७ ⁑ अलेखूं हिटलर, राजस्थानी कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन १९८४ ⁑ समकालीन भारतीय साहित्य, अंक ५३-५४, अतिथि सम्पादक।

पुरस्कार व सम्मान

• साहित्य अकादेमी, १९७४, राजस्थानी का प्रथम पुरस्कार • भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता १९९० • नाहर पुरस्कार, बम्बई, १९९५ • राजस्थान श्री, जयपुर, १९७७ • राजस्थान रा रतन, अजमेर, १९८० • द ग्रेट सन ऑफ राजस्थान, ऑल इण्डिया कॉनफरेंस ऑफ इंटेलेक्चुवल्स १९९५

विदेश-यात्रा

• एम्स्टर्डाम, बेल्जियम, पेरिस, हम्बुर्ग १९७८ • फ्रेंकफर्ट, हेडलबर्ग, सितम्बर १९८६
• मॉस्को, लेनिनग्राड १९९१ • चीन, नवम्बर १९९१

आत्म-कथ्य

विद्यार्थी-जीवन में कई छोटे-बड़े अपराध किये। पर बाहर से सामाजिक दण्ड मुझे एक भी नहीं मिला। और वही मेरे लिए सबसे बड़ी सजा हो गई। भीतर-ही-भीतर, वैयक्तिक रूप से स्वयं को इतना दण्डित किया कि वह बड़े-से-बड़े अपराध के लिए भी कठोर होता। उस दण्ड का परिणाम है कि मैं कातिल, चोर, लुटेरा — साफ शब्दों में कहूँ कि रंगा-बिल्ला नहीं बन कर एक लेखक बन गया। अपने जीवन के प्रति निरन्तर अत्याचार किये। पर अक्षर की मर्यादा को, शब्द की महिमा को, कलम की प्रतिष्ठा को और अध्ययन की पवित्रता को जाने-अजाने कभी दूषित नहीं किया। मगर उसके श्रेय का एकमात्र हकदार मैं ही नहीं हूँ। हकदार हैं वे सभी छोटे-बड़े साथी-सहयोगी, जिन्होंने हर संकट की घड़ी में मुझे उबारा है। जिसके परिणाम-स्वरूप दहकते अंगारों की भट्टी में बारूद की पुड़िया ज्यों-की-त्यों सुरक्षित रह गई, जैसे तिजोरी के बीच पड़ी हो। कभी-कभार अनहोनी और सहजता के बीच युद्ध छिड़ जाता है। न भट्टी ने हार मानी और न बारूद की पुड़िया ने। पराजय की तिलमिलाहट में भट्टी का रोष लपलपाता रहा और बारूद की पुड़िया चुपचाप उसकी चुनौती स्वीकार करती रही। ठौर-ठौर काले अक्षरों में बिखर कर अपनी मुस्कान छितराती रही। ... यदि समय-समय पर साथियों के स्नेह की 'गोचरी' मुझे नहीं मिलती तो मैं कब का महाभारत की लड़ाई हार चुका होता। और इस बात का मुझे मन-ही-मन कम दुख नहीं है कि लेखक का यश कृपण की तरह अकेले-ही-अकेले इकट्ठा किये जा रहा हूँ।

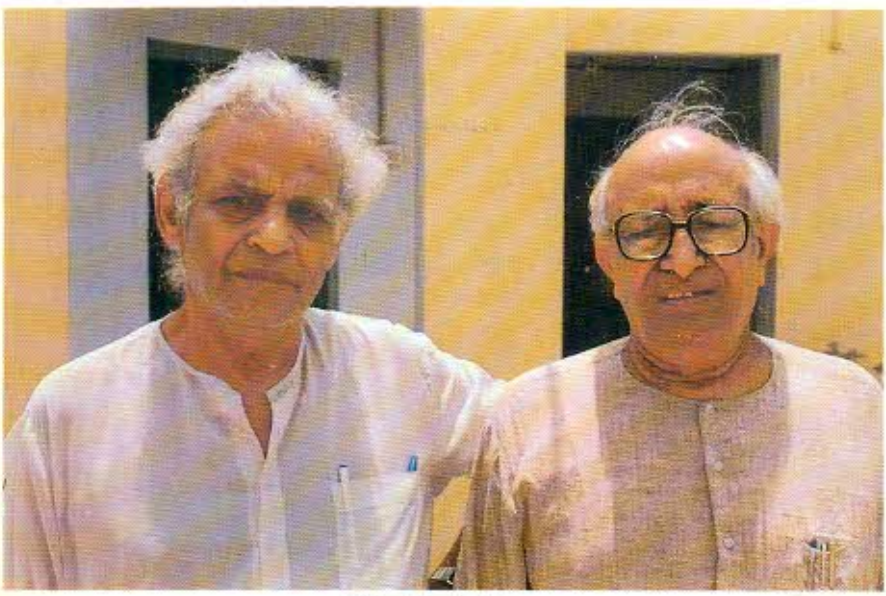

कोमल कोठारी के साथ